दलित आंदोलन और डा. भीमराव आंबेडकर

Avinash Kumar
Assistant Professor & Head
Department of History
Patna College, Patna-800005
Mobile No. 6202393206
E-mail Id: avinashisavailable@gmail.com

महाराष्ट्र के अछूत महारों ने 1920 के दशक में अपनी बिरादरी के पहले स्नातक डा. भीमराव आंबेडकर के नेतृत्व में एक स्वतंत्र आंदोलन विकसित किया। अछूत महारों की मांगों में अधिक प्रतिनिधित्व, सार्वजनिक तालाबों का उपयोग करने एवं मंदिर-प्रवेश करने का अधिकार और 'महारवतन' की समाप्ति सम्मिलित थी। महारवतन में महारों को गाँवों के मुख्यिों के घर पारंपरिक रूप से सेवा-कार्य करना पड़ता था। गांधीजी ने 1920 के असहयोग के प्रस्ताव में छुआछूत की समाप्ति को स्वराज की प्राप्ति की बुनियादी शर्त घोषित किया था। गांधीजी ने छुआछूत को विकृति कहकर उसकी निंदा की, लेकिन वे वर्णाश्रमधर्म को सामाजिक श्रम विभाजन की एक आदर्श व्यवस्था कहकर उसका गुणगान भी किये।

डा. भीमराव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्य प्रदेश में इंदौर के निकट महू छावनी में महार जाति के सूबेदार रामजी सकपाल एवं भीमाबाई की 14वी संतान के रूप में हुआ। डा. भीमराव की स्मरण-शक्ति, बुद्धिमत्ता, ईमानदारी, सच्चाई, नियमितता और दृढ़-स्वभाव से प्रभावित होकर सतारा के एक ब्राह्मण शिक्षक ने उन्हें 'आंबेडकर' उपनाम दिया था। डा. भीमराव 1908 में अपनी जाति की रमाबाई के साथ विवाह-सूत्र में बँध गये, किंतु 1935 में रमाबाई की मृत्यु हो गई। इसके बाद आंबेडकर ने 1948 में सारस्वत ब्राह्मण कुल की डा. शारदा कबीर से विवाह किया। डा. भीमराव आंबेडकर को बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की छात्रवृत्ति पर 1913 में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश गये। डा. भीमराव आंबेडकर ने अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच.डी. पूरी की, किंतु धनाभाव के कारण पी-एच.डी. की उपाधि बाद में 1924 में मिल सकी।

डा. भीमराव आंबेडकर ने 1916 में 'लंदन स्कूल आफ इकोनामिकल एंड पालीटिकल साइंस' में प्रवेश लिया, किंतु छात्रवृति रुक जाने के कारण उन्हें बीच में ही पढ़ाई छोड़कर स्वदेश लौटना पड़ा। भारत लौटकर डा. भीमराव आंबेडकर ने पूर्व हस्ताक्षरित अनुबंध के अनुसार महाराजा बड़ौदा के यहाँ सैन्य-सचिव की नौकरी की, किंतु उन्हें अछूत के रूप में निरंतर अपमान और तिरस्कार के दंश झेलने पड़े। जतिगत दंश और अपमान के कारण डा. भीमराव आंबेडकर सैन्य-सचिव की नौकरी छोड़कर बंबई चले गये। इसी समय डा. भीमराव आंबेडकर ने अपना शोधपत्र 'भारत में छोटी जोत और उसका हल' प्रकाशित किया।

डा. भीमराव आंबेडकर नवंबर 1918 में बंबई के सिडनेम कालेज आफ कामर्स एंड इकोनामिक्स में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रोफेसर नियुक्त हुए। 1920 में डा. भीमराव आंबेडकर को महाराजा कोल्हापुर की छात्रवृति मिल गई और वे प्रोफेसर का पद छोड़कर पुनः अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करने लंदन चले गये। जनवरी 1923 में डा. भीमराव आंबेडकर को डी.एस-सी. की उपाधि मिली और लंदन के 'गेज इन' से बैरिस्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। डा. भीमराव आंबेडकर 3 अप्रैल 1923 को डाक्टर आफ साइंस, पी-एच.डी. और बार एट ला जैसी बड़ी उपाधियों के साथ भारत लौट आये।

स्वदेश लौटकर डा. आंबेडकर ने बंबई में वकालत के साथ-साथ अछूतों पर होनेवाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू किया। छत्रपति शाहूजी महाराज के ब्राह्मण-विरोधी आंदोलन के कारण महारों में सामाजिक-राजनीतिक चेतना की धारा बह रही थी। कोल्हापुर के महाराजा की अध्यक्षता में मई 1920 में नागपुर में अखिल भारतीय दलित वर्ग परिषद् (ऑल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज कॉन्फ्रेंस) का आयोजन हुआ। छत्रपति शाहूजी महाराज ने कह दिया कि युवा आंबेडकर के रूप में दलित-अछूतों को उनका मसीहा मिल गया है। नागपुर में 1926 में अखिल भारतीय दलित वर्ग नेता सम्मेलन में ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज एसोसिएशन का गठन हुआ।

ऑल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज एसोसिएशन के पहले निर्वाचित अध्यक्ष मद्रास के एम. सी. राजा थे। डॉ. आंबेडकर ऑल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज एसोसिएशन के उपाध्यक्षों में एक उपाध्यक्ष थे। आंबेडकर ने ऑल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज एसोसिएशन से त्यागपत्र दे दिया। आंबेडकर का मानना था कि वर्गहीन समाज गढ़ने से पहले समाज को जातिविहीन करना होगा। अपने आंदोलन को धारदार और व्यापक बनाने के लिए डा. भीमराव आंबेडकर ने 1924 में 'मूकनायक' और 1927 में 'बहिष्कृत भारत' जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया और जुलाई 1924 में बंबई में 'बहिकृत हितकारिणी सभा' की स्थापना की।

1920 के दशक में बंबई में एक सम्मेलन में बोलते हुए डा. भीमराव आंबेडकर ने कहा था कि जहाँ मेरे व्यक्तिगत हित और देशहित में टकराव होगा, वहाँ मैं देश के हित को प्राथमिकता दूँगा, किन्तु जहाँ दलित जातियों के हित और देश के हित में टकराव होगा, वहाँ मैं दलित जातियों को प्राथमिकता दूँगा। डा. आंबेडकर ने 1927 में पेयजल के सार्वजनिक संसाधनों को समाज के सभी जातियों के लिए खुलवाने और दलितों को हिंदू मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन शुरू किया। डा. भीमराव आंबेडकर ने 25 दिसंबर 1927 को महाड़ के चावदार तालाब का पानी पीने के सत्याग्रह किया। डा. भीमराव आंबेडकर के आंदोलन की रणनीति थी कि राज्य द्वारा बनाये गये कानूनों का प्रयोग कर ही दलितों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी जाए।

डा. भीमराव आंबेडकर का महाड़ के चावदार तालाब का पानी पीने का सत्याग्रह और बाद के आंदोलन नियम-कानून के दायरे में ही किये गये। महाड़ सत्याग्रह के दौरान ही 25 दिसंबर 1927 को वर्णव्यवस्था की परिपोषक मनुस्मृति का दहन किया गया। डा. आंबेडकर ने 1928 में साइमन कमीशन के समक्ष शिकायत की कि "ब्रिटिश सरकार से दलित जातियाँ संतुष्ट नही हैं।" आंबेडकर ने दलितों के लिए अलग निर्वाचकमंडल की माँग सबसे पहले 1928 में साइमन आयोग के समक्ष की थी। डा. भीमराव आंबेडकर ने वयस्क मताधिकार के साथ-साथ बंबई विधानसभा में 22 आरक्षित सीटों की माँग की।

डा. भीमराव आंबेडकर नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों से भी संतुष्ट नही थे क्योंकि उसमें लगभग आधी जनसंख्या वाले अछूतों और पिछड़ी जातियों (शूद्रों) के प्रतिनिधियों को कोई जगह नही दी गई थी। डा. भीमराव आंबेडकर ने 1929 में 'समता समाज संघ' की स्थापना की और अगले वर्ष 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में अछूतों के प्रवेश की पाबंदी को हटाने के लिए जबरदस्त सत्याग्रह किया। अस्पृश्य समुदाय में बढ़ती लोकप्रियता और जन-समर्थन के कारण डा. आंबेडकर गोलमेज सम्मेलन में आमंत्रित किये गये। डा. भीमराव आंबेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में सत्ता में भागीदारी की अवधारणा पर अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन के अधिकार की माँग की।

1931 में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गांधीजी के साथ आंबेडकर का टकराव दलित वर्गो के अलग निर्वाचकमंडल के मुद्दे पर हुआ। 19 मई 1931 को बंबई में अखिल भारतीय दलित वर्ग नेता सम्मेलन ने औपचारिक प्रस्ताव पारित किया कि दलित वर्गो को एक अल्पमत के रूप में उनके अलग निर्वाचकमंडल के अधिकार की गारंटी दी जानी चाहिए। 1927 व 1932 में डा. आंबेडकर को मुंबई विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया गया, जहाँ उन्होंने दलितों-शोषितों के मूल अधिकारों की जोरदार वकालत की। फरवरी 1932 में ऑल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेज कॉन्फ्रेंस की कार्यसमिति ने आंबेडकर की अलग निर्वाचकमंडल की माँग की निंदा की क्योंकि एम. सी. राजा और अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष डॉ. बी. एस. मुंजे के बीच 'राजा-मुंजे समझौता' हुआ था। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डॉनल्ड ने 1932 में 'लोथियन समिति' की रिपोर्ट के आधार पर 'सांप्रदायिक निर्णय' (कम्यूनल अवार्ड) द्वारा अछूतों के लिए पृथक् निर्वाचन के अधिकार की घोषणा की।

प्रतिक्रियावादी रूढ़िवादी शक्तियों के दबाव में गांधीजी पुणे की यरवदा सेंट्रल जेल में आमरण अनशन पर बैठ गये। रूढ़िवादी हिंदूओं, कांग्रेसियों और गांधीजी के समर्थकों के दवाब में आंबेडकर को 'पूना पैक्ट' के द्वारा अछूतों के लिए अलग निर्वाचन के अधिकार की माँग वापस लेनी पड़ी। आंबेडकर के शब्दों में गांधीजी का अनशन अछूतों को उनके राजनीतिक अधिकारों से वंचित करने और उन पर दवाब डालने के लिए गांधी द्वारा खेला गया एक नाटक था। गांधीजी के प्रबल विरोध के

बावजूद आंबेडकर 'पूना पैक्ट' के माध्यम से संयुक्त प्रतिनिधिमंडल में अनुसूचित जातियों के लिए 151 आरक्षित सीटों की व्यवस्था करवाने में सफल रहे। 1933 में बिहार में कुशवाहों, यादवों और कुर्मियों ने राजपूतों और भूमिहारों का विरोध करने के लिए 'त्रिवेणी संघ' नामक संस्था गठित की। पूना पैक्ट के प्रावधान 1935 के भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट) में शामिल किये गये। कांग्रेसी नेताओं ने बिहार के नेता जगजीवन राम को अध्यक्ष बनाकर मार्च 1935 में ऑल इंडिया डिप्रेस्ट क्लासेज लीग का गठन किया।

बिहार में जगजीवन राम ने 'अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ' के तत्वावधान में दलित जातियों को संगठित किया। जगजीवन राम ने 1946 में भूमिहीन श्रमिकों को संगठितकर 'बिहार खेतिहर मजदूर संगठन' बनाया। बिहार में शत-प्रतिशत अछूत-दलित भूमिहीन कृषक थे जो सामंतों-जमीदारों (भूमिहारों-यादवों) के उत्पीड़न का शिकार थे। डा. भीमराव आंबेडकर ने 1936 में एक स्वतंत्र राजनीतिक दल 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी' का गठन किया। 1937 के आम चुनावों में डा. आंबेडकर को बंबई में भारी बहुमत से विजय मिली और कुल 17 आरक्षित सीटों में से 13 सीटों के साथ 15 सीटें नवनिर्मित इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के खाते में दर्ज हुईं। मध्य प्रांत और बरार में भी अंबेडकरवादियों का प्रदर्शन अच्छा रहा।

1937 के चुनाव में कांग्रेस को पूरे भारत में 151 आरक्षित सीटों में से केवल 73 सीट ही मिल सकी।
डा. आंबेडकर धीरे-धीरे जाति-वर्ग समुच्चय की व्यापक आधारवाली राजनीति से अलग-थलग दलित समूहों की ओर मुड़ते चले गये। द्वितीय विश्युद्ध के दौरान 1942 में डा. आंबेडकर गर्वनर जनरल की कौंसिल के सदस्य चुने गये। नागपुर में 18 से 20 जुलाई 1942 तक आयोजित एक सम्मेलन में उन्होंने अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ (ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन) का गठन किया। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ के संविधान में दलितों को 'हिंदुओं से विशिष्ट और अलग' बताया गया था। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ जैसे नये और शुद्ध दलित संगठन में एम.सी. राजा जैसे नेता शामिल हुए थे।

डा. आंबेडकर का लक्ष्य था, सामाजिक असमानता दूर करके दलितों के मानवाधिकार की प्रतिष्ठा करना। कांग्रेस की चिंता सत्ता के हस्तांतरण और स्वतंत्रता की थी, जबकि डा. भीमराव आंबेडकर को भावी राष्ट्र-राज्य में दलितों की नागरिकता की शर्तो की चिंता थी। आंबेडकर ने कांग्रेस से कहा कि वे स्वराज के संघर्ष में भाग लेने को तैयार हैं, पर उन्होंने एक शर्त सामने रखी: "मुझे बतलाइए कि उस स्वराज में मेरी भागीदारी कितनी होगी।"
डा. भीमराव आंबेडकर को भय था कि स्वतंत्रता के बाद उच्च जातियाँ पुनः दलितों और अछूतों को अपना गुलाम बना लेंगी, इसलिए आंबेडकर ने अंग्रेजी सत्ता का समर्थन किया। डा. भीमराव आंबेडकर ने 20 जुलाई 1946 को पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की।

1946 के चुनाव में अनुसूचित जाति महासंघ को दलितों के लिए आरक्षित 151 सीटों में से मात्र 2 सीटें ही मिल सकी। स्वतंत्रता की पूर्व बेला में संविधान सभा की एक सीट पर आंबेडकर का नाम पेश करके और फिर उनको संविधान प्रारूप समिति (कांस्टिट्यूशन ड्राफ्टिंग कमिटी) की अध्यक्षता के लिए चुनकर कांग्रेस ने दलित प्रतिरोध को अपने में समाहित करने का प्रयास किया।

इ.वी. रामास्वामी, ने 15 अगस्त 1947 को 'शोक दिवस' के रूप में मनाने का आह्वान किया था और आजाद भारत के कांग्रेसी राज को 'ब्राह्मण राज' की संज्ञा दी थी। देश की स्वाधीनता के बाद कांग्रेस के नेतृत्ववाली नई सरकार में डा. भीमराव आंबेडकर देश के पहले कानून मंत्री बनाये गये। भारतीय संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष की हैसियत से डा. भीमराव आंबेडकर ने दलितों और निचली जातियों के अधिकारों के लिए विशेष प्रावधान किये। 26 जनवरी, 1950 को डा. आंबेडकर के आत्मिक उद्गार थे: "मैं कह सकता हूँ कि अगर कभी कुछ गलत हुआ, तो इसका कारण यह नही होगा कि हमारा संविधान खराब था, बल्कि इसका उपयोग करने वाला अधम था।" डा. भीमराव आंबेडकर ने चेतावनी दी थी कि "हम परस्पर-विरोधी जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। हमारे राजनीतिक क्षेत्र में समानता रहेगी, किंतु सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में असमानता रहेगी।

जल्द से जल्द हमें इस परस्पर विरोधता को दूर करना होगा, वरना जो असमानता के शिकार होंगे, वे इस राजनीतिक गणतंत्र के ढांचे को उड़ा देंगे।"

भारतीय संविधान ने छुआछूत-उन्मूलन के लिए एक कानूनी आधार तैयार किया और अस्पृश्यता को किसी भी रूप में स्वीकार करना अपराध माना गया। भावी सरकारों के मार्गदर्शन के लिए नीति-निर्देशक सिद्धांत निर्धारित किये गये और यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि "राज्य जन-कल्याण को प्रोत्साहित करने का प्रयास करेगा। हिंदू संहिता विधेयक (हिंदू कोड बिल) पर कांग्रेस के नेताओं ने आंबेडकर का समर्थन करने से इनकार कर दिया। डा. आंबेडकर ने 1951 में कांग्रेस मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया और फिर 14 अक्टूबर 1956 को अशोक विजयदशमी के दिन कुशीनगर के भिक्षु भदंत चक्रमणि से त्रिशरण एवं 22 प्रतिज्ञाओं के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। डा. आंबेडकर 6 दिसंबर, 1956 को महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। भारत सरकार ने 1990 में डा. आंबेडकर को 'भारत-रत्न' की उपाधि से अलंकृत किया।

आंबेडकर का दलित आंदोलन महात्मा फुले के ब्राह्मण-विरोधी आंदोलन से प्रेरित था। फुले और आंबेडकर के द्वारा शुरू किये गये आंदोलनों में बहुत कुछ समानताएं हैं। फुले और आंबेडकर दोनों ने मृतप्राय भारतीय समाज में आधुनिकता का प्रवेश कराने के लिए ब्रिटिश शासन की सराहना की, लेकिन दोनों ने सामाजिक ढांचे के आमूल-चूल परिवर्तन में इसकी सीमाओं को भी पहचाना। फुले और आंबेडकर दोनों ने राष्ट्रवादियों के इस दावे को नकारा कि भारत एक राष्ट्र है। फुले और आंबेडकर दोनों का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विश्वास नही था तथा दोनों ने इसका समान चित्रण एवं विरोध किया। फुले और आंबेडकर दोनों ने परजीवी पुरोहितों, सूदखोरों, जमीदारों और पूँजीपतियों का विरोधकर इनके द्वारा उत्पीड़ित जातियों को संगठित किया। फुले और बहुत सीमा तक आंबेडकर की भी योजना थी कि ब्राह्मणवाद के विरुद्ध शूद्र जातियों और अछूतों को एक साथ संगठित किया जाये। फुले और आंबेडकर दोनों ने ब्राह्मणवाद का कड़ा विरोध किया, लेकिन ब्राह्मणों से घृणा नही की। फुले और आंबेडकर दोनों तर्कवाद में विश्वास रखते थे और शिक्षा को निचली जातियों तथा अछूतों की मुक्ति का साधन मानते थे। गैर-ब्राह्मण और दलित आंदोलन दोनों ही अपनी तमाम उपलब्धियों को मजबूत करने और लंबे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने सभी सहयोगियों को एकजुट नही रख सके।

भारतीय समाज की श्रेणीबद्ध असमानता के कारण शूद्र और अतिशूद्र आमने-सामने आ गये। शूद्रों (पिछड़ों) और दलितों के बीच नेतृत्व की लड़ाई ने सामाजिक न्याय के आंदोलन पर दूरगामी विपरीत प्रभाव डाला।
गैर-ब्राहमणों और दलित आंदोलनों के नेता यह समझ ही नही सके कि संपन्न शूद्रों (पिछड़ी जातियों) की दलितों के साथ कोई एकता नही बन सकती है क्योंकि शूद्रों का आर्थिक हित दलित मजदूरों के शोषण पर ही आधारित होता है, और जातिगत-विभाजन ही दलित मजदूरों के शोषण में उनकी मदद करता है।

ग्रामीण इलाकों में, जहाँ जाति-व्यवस्था ज्यादा मजबूत है, शूद्र (पिछड़ी) जातियाँ दलितों के लिए ब्राह्मणवाद का बाना ओढ़ लेती हैं। जहाँ पिछड़ी जातियाँ किसान हैं, वहाँ भूमिहीन दलितों को किसानों की जमीनों पर मजदूरी करनी होती है। पिछड़ी जातियां दलितों के मुकाबले इसलिए भी खड़ी हुईं कि जातिगत श्रेष्ठता के कारण वे दलितों का आर्थिक शोषण करते हैं और आरक्षण के कारण दलितों की आर्थिक उन्नति से खतरा महसूस करती हैं। मनु की जातिवादी परंपरा को न तो फुले या पेरियार का शक्तिशाली गैर-ब्राह्मण आंदोलन तोड़ पाया और न ही आंबेडकर का दलित आंदोलन। भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका के बावजूद दलितों के जातिगत उत्पीड़न की घटनाएं आज भी अखबारों की सुखियां बनती हैं।